गुरु–शिष्य परम्परा : एक मूल्यांकन

डॉ0 प्रमोद कुमार मिश्र

किसी भी राष्ट्र के लिए शिक्षा एवं शिक्षितों का अनिवार्यतः महत्व होता है। विकासशील राष्ट्रों के लिए इसका महत्व कदाचित् अधिक ही होता है क्योंकि इन्हें विकास की स्वाभाविक, अस्वाभाविक समस्याओं से जूझते हुए राष्ट्र निर्माण और एकीकरण का चुनौतीपूर्ण कार्य करना पड़ता है। शिक्षा एक उपादान है जिसके कारण समाज व्यक्ति को अपनी संचित परम्परा और संस्कृति प्रदान करता है। शिक्षा की समुचित व्यवस्था पर ही सांस्कृतिक, बौद्धिक एवं वैज्ञानिक प्रगति सम्भव होती है।

प्राचीन भारत में गुरु शिष्य का सम्बन्ध आदर्शात्मक सम्बन्ध था। दोनों का सम्बन्ध पिता–पुत्र सा था।[1] यह कहा गया था कि शिष्य का यह कर्तव्य है कि वह अपने आचार्य को पितृतुल्य और मातृतुल्य माने तथा किसी भी अवस्था में उसके प्रति द्रोह न करे।[2] आचार्य की उच्चस्थ प्रतिष्ठा का सन्दर्भ महाभारत से भी मिलता है।[3] मनुस्मृति में यह उल्लिखित है कि विद्या ने ब्राह्मण के पास आकर कहा कि मैं तुम्हारा कोष हूँ, मेरी रक्षा करो, मेरी निन्दा करने वालों के लिए मुझे मत दो इससे मैं अत्यन्त वीर्यवती होऊँगी। जिसे तुम पवित्र जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी समझो उसे मुझे पढ़ाओ। मनु के अनुसार द्विज बालक के दो जन्म होते है। इसी से उसे द्विज कहा जाता है। पहला जन्म माता के गर्भ से होता है और दूसरा उपनयन संस्कार से। द्वितीय जन्म ब्रह्म अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति के लिए होता है और इस द्वितीय जन्म में उसकी माता गायत्री (मन्त्र) होती है, और पिता आचार्य होता है।[4]

प्राचीन भारत में शिक्षा को अंतर्ज्योति एवं शक्ति का स्रोत माना गया है जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों के संतुलित विकास से मनुष्य के स्वभाव में परिवर्तन करती एवं श्रेष्ठ बनाती थी। इस काल में शिक्षा मनुष्य को इस योग्य बनाती है कि वह जीवन के उत्तरदायित्वपूर्ण कर्तव्यों का सहजता से निर्वाह करते हुए इहलोक एवं परलोक के सुखों को प्राप्त कर सके। इसलिए शिक्षा को मुक्तिप्रदायिनी कहा गया है।[5] ज्ञान अप्रतिम है और यह कल्पतरू के सदृश सभी सिद्धियों का साधन है।[6] यह शाश्वत की उपलब्धि कराने वाली है–

'ज्ञानातशास्वस्योपलब्धि'

शिक्षा प्रकाश स्वरूप है जो मनुष्य का सही मार्गदर्शन करती है–

'नास्ति विद्या समंचक्षु'

मनुस्मृति में कहा गया है कि उपनयन संस्कार के बाद विद्यार्थी का दूसरा जन्म होता है।[7] शिष्य को अपना लेने के बाद गुरू उससे कोई शुल्क नहीं लेता था, बल्कि स्वयं उसे भोजन वस्त्रादि देकर उसकी सहायता किया करता था। शिष्य के बीमार होने पर गुरू उसकी सेवा करता तथा औषधि द्वारा उपचार किया करता था। शिष्य गुरु के परिवार के सदस्य की भांति निवास करता था। गृह कार्यों में उसकी सहायता किया करता था। वह गुरु के लिए भिक्षा मांगता था तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करने के लिए सदा उद्यत रहता था। वह गुरु की निन्दा नहीं कर सकता था और न निन्दा सुन सकता था। आपस्तम्ब का मत है कि गुरु की त्रुटियों को शिष्य एकांत स्थान में उससे बताये। गौतम ने व्यवस्था दी है कि धर्मविहीन गुरू की आज्ञा मानने से शिष्य इंकार कर सकता है।

प्रायः सभी ग्रन्थों में गुरु की सेवा शुश्रूषा को शिष्य का पुनीत कर्तव्य बताया गया है। वह गुरू के निमित्त प्रतिदिन जल, दातून, आसन आदि प्रदान करता था, ईंधन की व्यवस्था करता, घर की सफाई करता तथा गायों की सेवा करता था। मनु के अनुसार शुश्रुषा से ही विद्या की प्राप्ति होती है।[8] शिष्य प्रायः एक आचार्य को छोड़कर दूसरे के यहाँ नहीं जाता था। पतंजलि ने ऐसे शिष्यों को 'तीर्थकाक' कहा है जो एक आचार्य का परित्याग करके दूसरे आचार्य के

यहाँ जाते थे। जातक ग्रन्थों से विदित होता है कि कभी–कभी आचार्य अपनी कन्या का विवाह अपने योग्य शिष्य से कर देते थे। कुछ ग्रन्थ कन्या के साथ विवाह का निषेध करते हैं। शिष्य अपने शील, गुण एवं प्रतिभा के कारण गुरू का हृदय जीत लेते थे। शिष्य के कार्य, अकार्य के लिए गुरु ही उत्तरदायी होता था। गुरूपत्नी भी शिष्य के प्रति मधुरता एवं कोमलता का व्यवहार करती थी वह उसकी आवश्यकताओं तथा सुख दुःख का सदैव ध्यान रखती थी। गुरु अपने सभी शिष्यों में समभाव रखता था तथा उन्हें शिक्षा देता था। राजा–रंक सभी गुरूकुल में साथ–साथ शिक्षा प्राप्त करते थे। विद्यार्थी अत्यन्त निष्ठापूर्वक गुरूकुल के नियमों का पालन करते थे। उसे कठोर अनुशासन में रहना पड़ता था। अनुशासनहीन तथा उदण्ड विद्यार्थियों को गुरु के द्वारा प्रताड़ित किये जाने के उदाहरण भी मिलते है। इनमें गुरुकुल से हटाया जाना, उपवास कराया जाना अथवा यदि आवश्यक हुआ तो शारीरिक दण्ड दिया जाना भी शामिल था। जातक ग्रन्थ उदण्ड विद्यार्थियों के लिए कठोर दण्ड दिये जाने का विधान करते हैं। तिलमुत्थि जातक से पता चलता है कि काशी के एक राजकुमार को उसके गुरु ने शारीरिक दण्ड दिया था। समावर्तन संस्कार के बाद शिष्य गुरु–गृह से वापस आता था। उसके बाद भी उसका अपने गुरू के साथ सम्पर्क बना रहता था। वह प्रायः अपने गुरु के पास जाता था तथा उसे उपहारादि प्रदान करता था। गुरु भी अपने शिष्य के यहाँ जाते थे तथा यह देखते थे कि शिष्य अपने स्वाध्याय का पालन कर रहा है या नहीं। समावर्तन संस्कार के समय ही गुरु शिष्य को जो संबोधन करता था उसमें स्वाध्याय का क्रम जारी रखने को कहा जाता था। अध्यापकों के लिए उपाध्याय, गुरु एवं आचार्य शब्द प्रयुक्त किये गये हैं। आश्रम में रहने वाले छात्र अन्तेवासी तथा उनके भोजन, आवास की व्यवस्था करने वाले गुरू को 'अंतेवासी गुरु' कहा गया है। इसके अतिरिक्त कुछ छात्र ऐसे भी होते थे जो केवल पढ़ने के लिए ही आश्रम में आते थे और भोजन के समय अपने घरों को चले जाते थे।

प्राचीन काल में लोगों को यह विश्वास था कि गुरु सेवा के बिना ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं है।[9] उस समय छात्रों की चरित्रिक गुणों की उन्नति के लिए नैतिक गुणों पर जोर दिया जाता था। मांस, मदिरा, मिष्ठान्न का सेवन, जूता तथा छाता धारण करना, आभूषण तथा प्रसाधन पूर्णतया वर्जित था। वस्तुतः छात्र जीवन का आदर्श जीवन में सादगी तथा विचारों की उदात्तता माना गया।

अथर्ववेद, गौमल गृहसूत्र के अनुसार भिक्षा मांगकर जीवनयापन करना विद्यार्थी का कर्तव्य है। आश्वलायन गृहसूत्र का कथन है कि विद्यार्थी को भिक्षा देना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है साथ ही विद्यार्थी के लिए यह अनिवार्य था कि वह आवश्यकता से अधिक न मांगे और भिक्षा में मिले वस्त्र एवं द्रव्य आचार्य को दक्षिणा स्वरूप सौंप दे। शिक्षा के समाप्त होने पर भिक्षा नहीं मांगी जा सकती थी।[10] अल्तेकर ने इस संदर्भ में कहा है कि इससे विद्यार्थियों में अहंकार नष्ट होता था और वे विनयशील बनते थे, साथ ही इस व्यवस्था से निर्धन विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्ति सम्भव हो सकी होगी। कालांतर में नालंदा, विक्रमशिला जैसी संस्थाओं का उदय हुआ, जो राजाओं एवं धनी व्यक्तियों द्वारा वित्तपोषित थीं। जहाँ छात्रों के भोजन एवं आवास की निःशुल्क व्यवस्था थी।

प्रारम्भ में शिक्षा का मुख्य पाठ्यक्रम वैदिक साहित्य का अध्ययन ही था। क्रमशः इसमें इतिहास, पुराण, नाराशंशी गाथाएँ, खगोल विद्या, ज्यामिति एवं छंदशास्त्र समाहित हो गये। उपनिषद तथा सूत्रकाल में वैदिक मंत्रों के शुद्ध पाठ पर बल दिया जाता था।

इस प्रकार प्राचीन भारत में गुरु–शिष्य सम्बन्ध, पारस्परिक स्नेह तथा सौहार्द्र पर निर्भर थे।

मध्यकालीन भारत में हिन्दू शिक्षा पद्धति में प्राचीन भारत की पद्धति से सामान्यतः बहुत अधिक अंतर नहीं था। प्राथमिक विद्यालय या पाठशालाएं मंदिरों के साथ संलग्न होते थे जहाँ प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती थी। खेतों में फसल

कटने के समय दिये गये अनुदानों से गांवों में विद्यालयों की स्थापना की जाती थी। हिन्दू शिक्षा मूलतः धर्मनिरपेक्ष थी। इसका मुख्य उद्देश्य चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, प्राचीन संस्कृति की रक्षा, सामाजिक और धार्मिक कर्तव्यों के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करना था। प्रत्येक छात्र ब्रह्मचर्य धारण करके सादा जीवन व्यतीत करता था। अनुशासन संयम और स्वावलम्बन पर विशेष बल दिया जाता था। उच्च शिक्षण संस्थाएं अधिक हिन्दू आबादी वाले स्थानों में स्थापित की जाती थी। इसमें पण्डित लोग संस्कृत के माध्यम से व्याकरण तथा तर्कशास्त्र की शिक्षा देते थे। इस शिक्षण संस्थाओं में छात्र संस्कृत भाषा और साहित्य, पुराण, वेद, दर्शनशास्त्र, आयुर्विज्ञान, खगोल विद्या आदि का अध्ययन करते थे।

शिक्षण विधि मौखिक थी। प्रारम्भिक शिक्षा के लिए कोई अभ्यास पुस्तिका जैसी चीज नही थी। छात्र आरम्भ में लकड़ी की तख्ती या जमीन पर ही उंगलियों से अक्षर या अंक लिखकर अभ्यास करते थे। बाद में विद्यार्थियों को बांस या नरकट की कूची से ताड़पत्रों पर लिखने को कहा जाता था। पढ़ाई के लिए सामान्यतः छात्रगण किसी वृक्ष की छाया में एकत्र होकर जमीन में बैठ जाते थे। विद्यार्थी गुरू के प्रति श्रद्धावनत रहता तथा उसके पैर छूकर सम्मान प्रदर्शित करता था। अठारहवीं सदी के यात्री वार्टलोम्यु इस सम्बन्ध में लिखता है कि ''गुरु सदैव समुचित सम्मान प्राप्त करता था। छात्र भी बड़े आज्ञाकारी थे और शायद ही कभी वे किसी नियम का उल्लंघन करते थे।''

इस काल में नियमित रूप से कोई वार्षिक परीक्षा नहीं होती थी। किसी दिये गये विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेने पर अगली कक्षा के लिए उत्तीर्णता दे दी जाती थी। इस निर्णय का एकमात्र अधिकार शिक्षक को प्राप्त था। नियमित रूप से कोई डिग्री प्रदान नहीं की जाती थी। लेकिन अध्ययन समाप्त होने पर छात्रों को सार्वभौम, उपाध्याय, महामहोपाध्याय, पीयूषवर्ष और पक्षधर आदि उपाधियाँ प्रदान की जाती थी। जनसाधारण के प्रश्नों का ठीक–ठाक उत्तर देने वाले को सरमंत्री की उपाधि प्रदान की जाती थी।

मध्यकाल में मुस्लिम शिक्षा धर्म से प्रभावित थी इसका मुख्य उद्देश्य इस्लामी सिद्धान्त और दर्शन की जानकारी प्राप्त कर अपने ज्ञान को बढ़ाना था। यह इस्लाम धर्म के प्रचार तथा उसमें आस्था उत्पन्न करने में सहायक थी। इस काल में मध्य और पश्चिमी एशिया आधारित इस्लामी शिक्षा पद्धति का विकास हुआ। इस काल में प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाएं मकतब कहलाती थी। ये मकतब सामान्यतः मस्जिदों से संलग्न होते थे और कभी–कभी निजी मकानों में भी होते थे मदरसे उच्च शिक्षा के केन्द्र थे, जहाँ विद्यार्थी मकतब की शिक्षा पूर्ण करने के बाद जाते थे जब बच्चा चार वर्ष चार माह और चार दिन का होता था तो सामान्यतः खतना के बाद ही विसमिल्लाह या मकतब समारोह सम्पन्न किया जाता था। स्कूल में बच्चे के प्रवेश के लिए शुभ घड़ी निर्धारित की जाती थी, और ज्योतिषी से सलाह ली जाती थी।

मकतबों में मुस्लिम बालक जाकर मौलवी से पहला पाठ पढ़ता था और फिर अक्षर ज्ञान और शब्द ज्ञान प्राप्त करता था। जैसे ही लड़का पढ़ना लिखना सीख लेता, उसे व्याकरण पढ़ाया जाता था और फिर कुरान की शिक्षा दी जाती थी। प्रत्येक बच्चे को कुरान कंठस्थ करना पड़ता था। कुरान पढ़ लेने के बाद छात्रों को अरबी और फारसी व्याकरण का पाठ दिया जाता था। सुलेख पर विशेष ध्यान दिया जाता था और साथ ही गणित की शिक्षा दी जाती थी।

मदरसे ऊँची पढ़ाई के लिए स्कूल या कालेज के समान थे जो प्रायः शहर की बड़ी मस्जिदों के साथ सम्बद्ध होते थे। मध्यकाल में स्थापित कुछ प्रसिद्ध मदरसों में दिल्ली में मदरसा–ए–मुअज्जी (इल्तुतमिश द्वारा निर्मित), मदरसा–ए–फिरोजशाही (फिरोज तुगलक द्वारा निर्मित) जौनपुर की बीबी रजा बेगम का मदरसा, आगरा, मथुरा व मेवाड़ में सिकंदर लोदी के मदरसे। महमूद गवां का बीदर में निर्मित मदरसा, नारनौल में शेरशाह का मदरसा, फतेहपुर सीकरी

में अबुल फजल का मदरसा और दिल्ली में शाहजहाँ का मदरसा दार–उल–शफा थे। विद्वानों द्वारा भी अलग–अलग मदरसे स्थापित किये जाते थे।

शिक्षकों का बहुत सम्मान था और उनकी आज्ञा का पालन किया जाता था जो शिक्षक बिना किसी नोट या पुस्तक के भाषण दे सकता था उसका बहुत आदर किया जाता था। बदायूंनी अपनी पुस्तक 'मुंतखब उल तवारीख' में ऐसे शिक्षकों की बड़ी प्रशंसा की है।

सिकंदर लोदी के समय दर्शन एवं तर्कशास्त्र की पढ़ाई भी शुरू हुई थी। हुमायूँ ने गणित, खगोल विज्ञान और तर्कशास्त्र जैसे धर्मनिरपेक्ष विषयों के अध्ययन पर विशेष जोर डाला यहाँ तक कि उसने एक शाही फरमान के द्वारा खगोल विद्या का अध्ययन अनिवार्य कर दिया। भौतिकी, रसायनशास्त्र का अध्ययन अलग से नहीं होता था किन्तु ये गणित के अंश के रूप में पढ़ाये जाते थे।

वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में भारत की प्रगति को संतोषजनक नहीं माना जा सकता अगर हम विश्व बैंक के आंकड़ों पर दृष्टिपात करें तो भारत में वयस्क साक्षरता दर मात्र 36ः है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश के 47 जिलों में महिला साक्षरता 30ः से नीचे है।[11] यह एक भयावह स्थिति है। देश में आज भी 30 करोड़ 40 लाख निरक्षर है।[12] और वर्तमान में भारत की साक्षरता दर मात्र 74 प्रतिशत है।[13] जबकि विकसित देशों में यह दर 80ः से 90ः तक है और कहीं कहीं तो 95ः से भी ज्यादा है। ऐसी स्थिति में हमारी पहचान विदेशों में एक पिछड़े देश के रूप में है।

वर्तमान में गुरु–शिष्य परम्परा के नैतिक मूल्य भी टूटते नजर आ रहे हैं। भौतिकवादी प्रगति की आंधी में नैतिक मूल्य धराशायी हो रहे हैं और गुरु–शिष्य परम्परा कलंकित हो रही है। गलती चाहे गुरू की हो या शिष्य की प्रभावित तो सारा समाज होता है। अभी हाल की कई घटनाओं ने गुरु–शिष्य परम्परा को कलंकित किया है चाहे वह पटना विश्वविद्यालय में एक गुरु का अपनी छात्रा के साथ बहुचर्चित प्रेम प्रसंग रहा हो। या फिर उज्जैन में कुछ मानसिक रूप से विकलांग छात्रों द्वारा अपने गुरू की हत्या का मामला या फिर मेरठ का प्रसंग रहा हो या फिर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अपने ही गुरु (तत्कालीन कुलानुशासक) के मुंह पर कालिख पोतने का मामला रहा हो या डीन फैकल्टी ऑफ आर्टस के साथ मारपीट, कुलपति के साथ अभद्रता का मामला रहा हो हर जगह गुरू–शिष्य सम्बन्ध तार–तार होते नजर आये। इस पर नवोदित समीक्षक एवं लेखक प्रमोद कुमार मिश्र का कहना है कि ''पश्चिम की आंधी ने हमारी संस्कृति रूपी खिड़कियों एवं दरवाजों को हिलाकर रख दिया है, अगर हमने इन खिड़कियों दरवाजों का जीर्णोद्धार नहीं किया तो वह दिन दूर नहीं जब ये उखड़ कर दूर जा गिरेंगी।[14] वास्तव में आज आवश्यकता है गुरू–शिष्य परम्परा को प्रतिष्ठत करने की नहीं तो हमारी सभ्यता–संस्कृति, शिक्षा व्यवस्था को धराशायी होने में देर नहीं लगेगी।

सन्दर्भ

1. पुत्र मिवैनम्भिकांक्षन।। आप0 धर्मसूत्र 1/2/8/24
2. त मन्येत पितरं–मातरं च तस्मै च दुह्येत्कतमच्चनाह। निरूक्त 2, 41
3. महाभारत, उद्योगपर्व 44/6/20/1
4. मनुस्मृति, 2–114–12 तथा 2/169–170
5. 'सा विद्या या विमुक्तये'
6. 'किं किं न साधयति कल्पते विद्या'
7. 'यत्र यद् ब्रह्म जन्मास्य मीजीबन्धनचिह्मितम्'– मनुस्मृति 2.170
8. मनुस्मृति, 2.159
9. 'गुरूशुश्रुया ज्ञानं शान्ति योगेन बिन्दति।'
10. 'समावृतम्य भिक्षाउसचिकरा।'
11. 'भारत 2012' प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ0 245
12. वही, पृष्ठ–248
13. वही, पृष्ठ–248
14. सांस्कृतिक सृजन, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, पृ0 105

प्रवक्ता– एम0ए0एस0पी0जी0 कॉलेज
इलाहाबाद राज्य विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
उत्तर प्रदेश, मो0–7347751856